अध्यापन और नव-उदारवादी राज्य*

कृष्ण कुमार

नव-उदारवादी राज्य की छत्र-छाया में मार्केट के नियमानुसार शैक्षिक संस्थाओं के चलने चलाने के विचार को ठीक मानने के चलन ने जोर पकड़ा है। इसमें शिक्षण संस्थानों की परिणाम आधारित संस्कृति का सबसे ज्यादा बोझ अध्यापक वर्ग पर पड़ा है। इसके तहत अध्यापकों से अपेक्षा की जाती है कि वे अपने समय का अधिकतर हिस्सा औपचारिक योजनाएँ बनाने, उनका विवरण देने, उनको उचित ठहराने, और खुद का मूल्यांकन करने में लगा दें।

'नव उदारवाद' एक स्पंज (पानी सोख) सरीखी अवधारणा है, जो हमारे गुस्से, अविश्वास और अव्यवस्थाओं को सोख लेती है। अगर कुछ समय के लिए हम गुस्से से शुरू करते हुए, इन तीनों मनोभावों को देखें तो पाएँगे कि, हम जब भी 1980 के दशक से हुई पराजयों/ हारों के बारे में सोचते हैं तो, नव-उदारवाद हमारे अन्दर गुस्से के भाव पैदा करता है। इन नुक्सानों का सीधा सरोकार उस स्वायत्तता और गरिमा के क्षरण से था, जो अध्यापन के पेशे से जुड़ा था और एक हद तक शोध से उस तरह जुड़ा था, जहाँ उन मुद्दों पर खोज की आजादी थी, जो मुद्दे असली थे, ना कि वे जिन्हें महत्त्वपूर्ण माना जाता था। उन सहयोगी संस्थाओं का क्रमिक क्षय भी, जो कभी शैक्षिक जीवन और संस्थानिक लोकाचार का हिस्सा रही थीं, इन पराजयों का हिस्सा था। नव-उदारवाद के खिलाफ हमारा गुस्सा उन सभी पेशेवर ढाँचों के क्षय की वजह से भी है, जिनके हम कभी अभ्यस्त हो गए थे। नव-उदारवाद के खिलाफ हमारा अविश्वास तब भी पैदा होता है, जब हम उन सभी चीजों को याद करते हैं, जिन्हें हम कार्यकुशलता, जवाबदेही और गुणवत्ता के नाम पर करने को मजबूर हो गए हैं। विश्वविद्यालयों में किसी ने पिछली पीढ़ी के किसी अध्यापक

* Economic & Political Weekly May 21, 2011 Vol xlvi no 21 से उद्धृत।

द्वारा प्रशासनिक अधिकारी को अपने कार्यों और भविष्य में होने वाली कक्षाओं का ब्यौरा देते हुए सुना या देखा नहीं होगा।

यदि हम अभी जितना इसके अभ्यस्त न होते तो यह विचार हमें अजीब लग सकता है कि अध्यापन और शोध का मूल्यांकन गुणवत्ता के उन्हीं मसौदों (प्रोटोकॉल) के आधार पर किया जा सकता है जो व्यापार और उद्योगों से सम्बन्धित हैं। अध्यापन के दौरान विद्यार्थियों से प्रेरित झुकाव और गहनता ही इसके विशिष्ट लक्षण थे। लेकिन, इस दौर की पावर प्वाईंट प्रस्तुतीकरण जनित नई हुकूमत ऐसे अनियोजित/अनाधिकारिक संवाद में बाधा डालती है। नव-उदारवाद जिस तीसरे भाव को जन्म देता है, जो दुविधा का भाव है, वह यह जानने की कोशिश करता है कि क्या हुआ और कैसे हुआ?

ऐसा लगता है कि कोई भी नियम या सिद्धान्त इन विश्वविद्यालयों या विद्यालयों में हो रहे बदलावों की पूर्ण रूप से सन्तोषजनक व्याख्या नहीं कर सकता है। पूर्व-अनुमानित नतीजों और उनकी आकलन करने की विधाओं से अध्यापन की इस नई पौध ने व्यवहारवाद को फिर से गले लगा लिया है, जो कि, शैक्षणिक सिद्धान्तों में संज्ञानात्मक क्रान्ति इसके शैक्षणिक प्रभावों की दिशा में पीछे हटने वाला एक कदम है, जिसे 1960 के दशक में तथाकथित विकसित दुनिया के देशों में संस्थागत बना दिया गया था। इस तथाकथित विकासशील दुनिया में, व्यवहारवादी प्रथाओं (behavioursitic practices) को वैसे भी बहुत अकादमिक चुनौती नहीं मिली थी, और अब तो उन्हें स्कूल प्रबन्धन का पूरा समर्थन प्राप्त है। पश्चिम के धनी देशों में, व्यवहारवाद की वापसी एक अनकही आम सहमति का प्रतीक है, जिसमें शैक्षणिक विशेषज्ञ, स्कूल की प्रभावशीलता, छात्रों से परामर्श, और इतने पर सक्षम कर देने वाली जिम्मेदारी की वाकपटुता का प्रदर्शन करते हैं, जिससे पाठ्यक्रम में बाजार-चालित बदलाव को छुपाने का प्रयास किया जाता है।

विचारों का इतिहास

जब से 'नव-उदारवाद' शब्द प्रचलित हुआ है, तब से मैंने अपने विद्यार्थियों को यह बताने की बहुत कोशिश की है, कि इसका क्या अर्थ है? और जब उन्हें इसकी आवश्यकता हो, उस समय इसका उपयोग कैसे किया जा सकता है? ज्यादातर मामलों में मैं सफल नहीं हुआ हूँ। एक अध्यापक के तौर पर कोई इसकी व्याख्या करने की चाहे कितनी भी कोशिश क्यों न कर ले, लेकिन नव-उदारवादी युग में पैदा हुए और पले-बढ़े छात्र इस शब्द को बेधड़क (footloose) अन्दाज में केवल भाषाई उपकरण के रूप में इस्तेमाल करने से नहीं चूकते, जिसका प्रयोग बिना विश्लेषणात्मक हुए, प्रभावशाली होने की इच्छा से कभी भी किया जा सकता है। केवल एक दुर्लभ छात्र ही पश्चिमी उदार लोकतान्त्रिक विचार के ऐतिहासिक सन्दर्भ में प्रगतिशील शिक्षण सिद्धान्त और ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन से स्वतन्त्रता के संघर्ष के दौरान भारत में उभरी इसकी प्रशाखाओं के अध्ययन का धैर्य दिखाता है। विचारों की शजरा (genealogy) का पता लगाने और किसी शब्द को ऐतिहासिक सन्दर्भ में रखने का समय ही अधिकांश शिक्षकों और छात्रों के पास उपलब्ध नहीं है। इससे भी बदतर, विचारों के इतिहास के लिए इस तरह की खोज को शिक्षा के अध्ययन के लिए प्रासंगिक नहीं माना जाता है। हमसे सिद्धान्त और इसके विकास की समझ को शामिल करने वाली शैक्षणिक यात्राएँ करने की उम्मीद नहीं की जाती है। शिक्षा विभागों, और शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में, एक ऐतिहासिक और दार्शनिक सन्दर्भ में शैक्षणिक आधुनिकतावाद का पता लगाने के लिए पाठयक्रम काफी संकुचित हो गया है। क्या हम अनजाने में अपने इस स्थान का आत्मसमर्पण करते हैं? किसी को भी इसमें अचरज हो सकता है, लेकिन *अच्छा* उदारवादी के रूप में ऐसा करने के लिए सहमत होना, क्या सामंजस्य बैठाना उदारवादी होने का ही हिस्सा नहीं है?

उदारवादी विचार ने 19वीं शताब्दी में सफलतापूर्वक जगह बनाई, जब इसने शिक्षा में उपयोगितावाद (utilitarianism) के विमर्श को प्रसारित किया और शिक्षा के लक्ष्य और अभ्यास को एक आन्तरिक वैधता प्रदान की। उपयोगितावादी सिद्धान्त लोकतान्त्रिक मूल्यों रहित, यहाँ तक कि लोकतान्त्रिक मूल्यों का तिरस्कार करते थे, और इसलिए राज्य को, सम्पत्तियों के संरक्षक को छोड़कर कोई दूसरी भूमिका देने के पक्ष में नहीं थे। इन्हीं सिद्धान्तों ने स्थानीय भ्रष्टाचारी अभिजात्य वर्ग के साथ मिलकर औपनिवेशिक शासन को नैतिक वैधता प्रदान की (कुमार 1991-2005)। उत्परिवर्तन (mutation), जिसके माध्यम से 19वीं शताब्दी के दौरान उपयोगितावादी विचार-विमर्श आया, ने गरीब बच्चों को समर्थ बनाने और उन्हें शिक्षित करने की आवश्यकता में राज्य के लिए एक नई

भूमिका की पहचान को आगे बढ़ाया। इस भूमिका ने इस विचार से अपना तर्काधार बना लिया कि, शिक्षा व्यक्ति को न केवल उपयोगिता से अधिक आनन्द पाने की क्षमता प्रदान करती है, बल्कि *केवल होने मात्र से* रचनात्मक और चिन्तनशील होने की क्षमता भी प्रदान करती है (Macpherson 1974)। नव उदारवादी राज्य उदार लोकतान्त्रिक विचारों के इस मुद्दे को फैलाने के लिए गुणवत्ता और दक्षता के विमर्श का उपयोग करता है।

"राजनीतिक सम्भावना की सीमा तक बाजार संस्थानों के दायरे को बढ़ाने" (Gray 2009:165) का नव-उदारवादी कार्यक्रम, स्वाभाविक रूप से 'उपभोग' केन्द्रित है; इसलिए यह आवश्यक है कि, शिक्षा से उपभोग्य वस्तु और अनुभव जैसा बर्ताव किया जाना चाहिए। यह, ये भी सुनिश्चित करता है कि अन्य संसाधन, जो शिक्षा को व्यक्ति की एजेंसी को बढ़ाने में सक्षम बनाते हैं, वे भी उपभोग्य सामग्री में बदल जाएँ। स्वास्थ्य और संस्कृति इसी श्रेणी में आते हैं। ये हमें यह स्वीकार करने का एक उदाहरण पेश करते हैं कि व्यापार मॉडल को अमल में लाने से उन संसाधनों और स्थितियों पर विनाशकारी प्रभाव पड़ता है जो बच्चों के साथ काम करने के दौरान शिक्षकों को उनकी पेशेवर उम्मीदों को समझने में सक्षम बनाते हैं। ये दो क्षेत्र युवाओं के साथ शिक्षक के काम में बाधा डालते हैं। मीडिया के माध्यम से स्वास्थ्य सेवाओं के व्यवसायीकरण और संस्कृति के वस्तुकरण (commodification) ने, अन्य विकासों के साथ-साथ स्थानीय परिवेश (home space) में पूरी तरह से नई परिस्थितियाँ पैदा कर दी हैं। जिस तरह से हेल्परिन और रोटरेटी (Helperin and Ratteree) (2003: 135) ध्यान दिलाते हैं, "कक्षा शिक्षकों को भयानक सामाजिक समस्याओं का अधिक से अधिक सामना करना चाहिए... जो कि उन शैक्षिक चुनौतियों से गुणात्मक रूप से अलग हैं जिन्होंने उन्हें पहले-पहल पढ़ाने के लिए आकर्षित किया था।"

<u>नव-उदारवादी शासन के तहत अध्यापन</u>

इस विचार ने कि शैक्षिक संस्थानों को बाजार सिद्धान्तों के साथ चलाया जा सकता है, सामान्य स्थिति का दर्जा पा लिया है और साथ ही साथ इसकी लोकप्रियता भी प्रबल हुई है। शैक्षिक सेवाओं के निजीकरण का विस्तार इस विचार की स्वीकृति के साथ हुआ है कि लाभ कमाना ऐसे उद्यमों का वैध उद्देश्य है। मुनाफे के अलावा दक्षता, जवाबदेही और गुणवत्ता जैसे विचारों की व्यापक

लोकप्रियता केवल नीति निर्माताओं और संस्थागत नेताओं (जिन्हें अब प्रशासकों के रूप में देखा जाता है) की ही दुनिया में ही नहीं हैं, बल्कि इसका प्रसार शिक्षा शिक्षकों और शिक्षा के विद्वानों के बीच में भी हुआ है। हमें यह समझने के लिए ज्यादा समय या कल्पना की जरूरत नहीं है कि, कम लागत के साथ गुणवत्ता की नई भाषा का लक्ष्य शिक्षकों पर निशाना साधना है। संस्थागत शासन के निगमकरण (corporatisation) का मतलब ही है कि शिक्षकों को सेवा प्रदाताओं के रूप में माना जाता है, जिन्हें अपेक्षित गुणवत्ता मानकों को पूरा करने के लिए नई सूचना प्रौद्योगिकी का नियमित उपयोग करना चाहिए और जिनकी स्वयं की भूमिका और भौतिक उपस्थिति के रूप में योगदान को लागत-कटौती के नियोजित पैंतरे के माध्यम से कम किया जा सकता है। यह शिक्षक ही है, जिस पर परिणाम-उन्मुख संस्थागत संस्कृति का सर्वाधिक बोझ गिरा है। अब एक शिक्षक और उसकी पेशेवर योग्यता की नियमित चर्चा, उसके प्रयासों से प्राप्त परिणामों की पूर्वानुमेयता और उनको मापने की क्षमता द्वारा की जाती है। कई देशों में शिक्षकों के दैनिक जीवन पर एक नई व्यवस्था थोप दी गई है। शिक्षकों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपने समय का अधिकतर हिस्सा औपचारिक योजनाएँ बनाने, उनका विवरण देने, उनको उचित ठहराने, और खुद की गतिविधियों का मूल्यांकन करने में व्यतीत करें। इन गतिविधियों के विवरण वाले दस्तावेजों को प्रबन्धन द्वारा गुणवत्ता और दक्षता का आकलन करने के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

इस व्यवस्था का एक परिणाम यह है कि अब शिक्षकों के बच्चों के साथ बिताए जाने वाले समय में अच्छी खासी कमी आई है। भारत जैसे देशों में, जहाँ पहले पूरी तरह से एक सामाजिक-आर्थिक परत (stratum [जाति और वर्ग के सन्दर्भ में]) को शिक्षा प्रणाली से बाहर रखा गया था, वह अब बच्चों को स्कूल भेजने में सक्षम है, शिक्षकों के कामकाज और उनकी दिनचर्या का नौकरशाहीकरण उन पर बच्चों के साथ सीधे बिताए जाने वाले समय में एक गम्भीर बाधा डालती है। वे बच्चे जो अपने परिवारों से स्कूल जाने वाली पहली पीढ़ी में शामिल होते हैं, उन्हें शिक्षक से साथ अधिक समय बिताने की आवश्यकता होती है। ये समस्या इस तथ्य से और भी बढ़ जाती है कि, शिक्षकों की स्वयं की सामाजिक पृष्ठभूमि विविधीकरण की प्रक्रिया से गुजर रही है। एक नए शिक्षक को कक्षा कक्ष में अपनी पेशेवर भूमिका निभाने के लिए (जो अकसर परिवार में उनकी भूमिका के साथ विरोधाभासी होती है), समय-समय पर प्रशिक्षण और संस्थागत जगह दोनों की जरूरत होती

है, जहाँ उसे अपने लिंग, वर्ग और जाति की पहचानों से निरन्तर समझौता और समायोजन करना पड़ता है। स्कूलों की नई प्रबन्धन व्यवस्था, एक शिक्षक के लिए इन कई भूमिकाओं और पहचानों से समायोजन करने की कम ही गुंजाइश छोड़ती है। वास्तव में, स्कूल के प्रबन्धकों और नौकरशाहों को शिक्षक की एक इन्सानके रूप में कोई चिन्ता नहीं होती है, वे उसे एक सेवा प्रदाता के रूप में देखते हैं, और उन्हें केवल उनकी उत्पादकता से मतलब होता है। न तो नगण्य संसाधनों वाले सरकारी स्कूलों और न ही विभिन्न प्रकार के निजी स्कूलों में शिक्षक के लिए कोई सहानुभूति है।

कार्यक्रमों की ठेकेदारी/ आउटसोर्सिंग

दक्षिण एशिया के कई हिस्सों में, गुणवत्ता सुधार कार्यक्रम बहुराष्ट्रीय गैर-सरकारी संगठनों (NGOs) या उनके स्थानीय खण्डों को ठेके पर दिए जा चुके हैं, जो अपने दाताओं (donors) की ओर से शिक्षकों के काम की निगरानी करते हैं और बदले में शिक्षक के प्रयासों और इन प्रयासों के परिणामों का एक श्रम-साध्य स्पष्ट विवरण माँगते हैं। एनजीओ विकासशील देशों में शिक्षा के क्षेत्र में नव-उदारवादी शासन का एक प्रमुख घटक हैं। काम करने की इस नई संस्कृति में जिसे सरकारी एजेंसियों के सहयोगी गैर सरकारी संस्थान बढ़ावा दे रहे हैं, पैरा-शैक्षणिक व्यक्तियों द्वारा संसाधक के तौर पर नियमित सेवारत प्रशिक्षण देना शामिल होता है। आमतौर पर ये लोग (पैरा-शैक्षणिक व्यक्ति) कक्षा के अनुभव के साथ साथ शिक्षा के सैद्धान्तिक ज्ञान में भी पीछे रहते हैं, लेकिन शिक्षक की बनिस्बत वे ऊँची हैसियत का लुत्फ उठाते हैं। जिन प्रशिक्षण कार्यक्रमों में शिक्षकों को भाग लेने के लिए मजबूर किया जाता है, उनके प्रति उनका निराशावादी और हताशा भरा रवैया शिक्षकों की प्रतिक्रिया की विशेषता होता है।

स्कूल के इस माहौल पर आधारित वर्णन को शिक्षक के काम और पहचान की महत्वहीनता का जिक्र करके पूरा किया जा सकता है, जो विकसित और विकासशील दोनों प्रकार के देशों में नव-उदारवादी नीति वाले शासन के अन्तर्गत प्रोत्साहित की गई भर्ती और प्रशिक्षण नीतियों के परिणामस्वरूप आया है। 'अच्छा अध्यापन' और 'कोई भी पढ़ा/सिखा सकता है' जैसे विचारों ने पूर्व-सेवा प्रशिक्षण के महत्त्व और इसे सुधारने की आवश्यकता को क्षीण किया है। अप्रशिक्षित शिक्षकों

की नियुक्ति, सैद्धान्तिक सामग्री से रहित अकादमिक प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों के बदले अल्पकालिक कार्यक्रमों को शुरू करने और प्रशिक्षण के एकमात्र साधन के रूप में दूरस्थ शिक्षा का उपयोग शिक्षकों की कमी से निपटने के लिए किए जा रहे कुछेक उपाय हैं। अब शिक्षक को एक ऐसे संसाधन के रूप में माना जाता है जो और अधिक प्रशिक्षण द्वारा लगातार विकसित करने के लिए है, न कि कोई व्यक्ति जिसकी अपनी एजेंसी और अनुभव से सीखने की क्षमता है।

शिक्षक की भूमिका में परिवर्तन, उसकी व्यावसायिक स्थिति और स्वायत्तता को नव-उदारवादी दृष्टिकोण की प्रमुख सफलता के रूप में वर्णित किया जा सकता है। इसे उदार-लोकतान्त्रिक संघर्ष के एक महत्त्वपूर्ण खण्डन के रूप में भी वर्णित किया जा सकता है जो कि, अध्यापन को एक आधुनिक पेशे के रूप में स्थापित करने के लिए अपने पेशेवरों को न केवल गरिमा और स्वायत्ता बल्कि पेशेवरों के समुदाय के रूप में काम करने का आत्मविश्वास भी प्रदान करता है। ये ऐसे शब्द हैं जो नव-उदारवादी शासन की नीतियों और व्यवस्थाओं के तहत और पिछली एक चौथाई सदी में एक पेशे के तौर पर अध्यापन के लक्षणों में आए हुए बदलावों व उन हानियों का आकलन करने में हमारी मदद कर सकते हैं जिन्हें अध्यापन ने एक पेशे के तौर पर सहन किया है। एक सम्बन्धपरक गतिविधि के रूप में, अध्यापन का मतलब है बच्चे को एजेंसी प्रदान करना और परिणामों में अनिश्चितताओं को आमन्त्रित करना। जैसा कि स्टेनहाउस (Stenhouse 1980) इंगित करते हैं कि, शिक्षा के सबसे मूल्यवान परिणाम वे हैं, जिनकी भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। इस तरीके का दृष्टिकोण, जो शिक्षा के मानवतावादी उद्देश्यों और शिक्षा के सम्बन्धपरक चरित्र के समान है, इसका आज के उस नव-उदारवादी लोकाचार में कोई स्थान नहीं है, जो पहले से तय परिणामों की प्राप्ति के लिए शिक्षकों को एक लिखित पाठ्यचर्या के साथ काम करने के लिए मजबूर करता है। इसका सीधा उद्देश्य दक्षता बढ़ाने के नाम पर संस्थाओं और प्रणालियों के बीच प्रतिस्पर्धा को तेज करना है।

वृहद सन्दर्भ

नव-उदारवाद का प्रतिनिधित्व राजनीतिक सोच के दायरे में उसी तरीके से होता है जैसे धर्म के क्षेत्र में कट्टरवाद प्रतिनिधित्व करता है, अर्थात, इतिहास के उस पार एक ऐसी छलाँग जो तथाकथित मूल मान्यताओं और प्रथाओं की ओर वापसी करने में सक्षम बनाता है। नव-उदारवाद

सिर्फ शिक्षा के क्षेत्र में बाजार के सिद्धान्तों को लागू करने के बारे में नहीं है, अपितु, यह विचारों से व्यवहार के बारे में भी है– विशेष रूप से राजनीतिक विचार –जिनकी शिक्षा के अध्ययन और शिक्षा के कार्यों के सन्दर्भ में कोई प्रासंगिकता नहीं है। यदि हम आज की प्रमुख विचारधारा के रूप में नव-उदारवाद की समझ बनाना चाहते हैं, तो हमारे पास उदारवाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की सराहना करने, एक विचारधारा के रूप में इसके वादों और इसकी आत्म-विस्मृति (self-oblivion) को समझने के अलावा कोई विकल्प नहीं हैं। उदारवाद के विस्तृत ऐतिहासिक सन्दर्भ में सिर्फ इतना संघर्ष शामिल नहीं है जो आज की पश्चिमी लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं ने अपनी भौगोलिक सीमाओं के भीतर व्यक्तिगत गरिमा और समानता स्थापित करने के लिए किया, बल्कि उन उपनिवेशों के नियन्त्रण द्वारा जहाँ ये मूल्य चलन में नहीं थे साम्राज्य-निर्माण का उद्यम भी शामिल है। यह संघर्ष उस औपनिवेशिक शासन के खिलाफ है जिसने उपनिवेशों में इन मूल्यों के लिए एक प्रारम्भिक स्थान बनाया। इससे पहले कि ये लिबरल जगहें अपने को मजबूत कर सकें, नव-उदारवादी नीतियों ने इन्हें दूर करने की शुरुआत कर दी है। इंग्लैंड में उदारवाद के आगमन और औपनिवेशिक शासन की निष्कर्षित भूमिका के बीच का सम्बन्ध उदारवादी सिद्धान्तकारों और इतिहासकारों का पसन्दीदा विषय नहीं रहा है। परन्तु उदारवादी नीतियों के समकालीन समर्थन को समझने के लिए सूत्रों की हमारी खोज में यह हमारे लिए एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। वह व्यापक प्रभाव जिसका लाभ नव-उदारवादी परिप्रेक्ष्य अब राष्ट्रीय प्रणालियों की विविधता से परे उठा रहा है, उसका बहुत कुछ लेना-देना साम्राज्य निर्माण के नए रूपों, पश्चिमी लोकतन्त्रों में असहमति के प्रबन्धन और पूर्व उपनिवेशों में लोकतान्त्रिक आकाँक्षाओं के प्रबन्धन से है। जब नव-उदारवादी नीतियाँ बाजार के कट्टरवाद का समर्थन करती हैं, तो वे लोकतन्त्र को फिर से परिभाषित भी करती हैं। लोकतन्त्र को बढ़ावा देने के साधन के रूप में निगरानी व्यवस्थाएँ और युद्ध की कोशिश उदारवादी मूल्यों के नए दृष्टिकोण के बारे में पर्याप्त रूप से खुलासा करती हैं। दोबारा दी गई ऐसी किसी भी परिभाषा में शिक्षा का उद्देश्य गहराई से अन्तर्निहित होता है।

धार्मिक कट्टरवाद की तरह, नव-उदारवाद भी अपने समर्थकों को प्रेरित करता है कि वे बहस में समय बर्बाद न करें और इसके बजाए कार्रवाई पर ध्यान दें। इस प्रकार, चिन्तन, वास्तविक दुनिया के मुद्दों पर बहस और बचाव योग्य फैसले की प्रक्रिया के रूप में, शिक्षा के विमर्शीय चरित्र का बलिदान किया जाता है। इसमें सच्चाई का एक तत्व भी है जो नव-उदारवादी वादे को एक

आदर्शवादी चमक प्रदान करता है। एक तरफ जहाँ धार्मिक कट्टरपंथी एक श्रेष्ठ न्यायसंगत और दैवीय शासन की आशा से प्रेरित है, वहीं नव-उदारवादी दिमाग उपकरणों के तकनीकी-यूटोपियनवाद (techno-utopianism) से प्रेरित है, विशेष रूप से उन सन्देशों की तात्कालिक पहुँच के माध्यम से जिनसे उनके विस्तार पर नियन्त्रण रखा जा सके। वास्तव में टेक्नो-यूटोपियनवाद में विश्वास रखने वाले, अकसर लोकतन्त्र को कमतर करके उसे केवल सम्प्रेषण की पहुँच में समता तक ही सीमित कर देते हैं। शिक्षकों और छात्रों के बीच तकनीकी रूप से मध्यस्थता करने वाले सरल संचार के प्रोत्साहन से शिक्षक की अपनी एजेंसी व प्रतिक्रिया देने और जुड़ाव महसूस करने में सहजता का भी ह्रास होता है। उच्च शिक्षा में, नव-उदारवाद नामक तकनीकी-यूटोपिया से संस्थागत अर्थव्यवस्था में गम्भीर असन्तुलन हुआ है, जिसने फीस में वृद्धि और प्राध्यापकों की संख्या में कटौती जैसे उपायों को प्रेरित किया।

शैक्षणिक आधुनिकतावाद, जो शिक्षा के बाल-केन्द्रित तरीकों के साथ जुड़ा हुआ है, इसकी जड़ें कल्याणकारी राज्य की स्थापना के लिए उदारवादी लोकतान्त्रिक संघर्ष में पाई जाती हैं। नव-उदारवाद की विचारधारा ने पूर्व उपनिवेशों में उभरते कल्याणकारी राज्यों की अर्थव्यवस्थाओं को संरचनात्मक दृष्टि से विश्व पूँजीवादी व्यवस्था में समायोजित करने के लिए विवश कर दिया है। इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप बच्चों के लिए खासकर स्वास्थ्य और शिक्षा के क्षेत्र में राज्य-सेवाओं में भारी कमी आई है। इस तरह की सेवाओं के लिए निजी एजेंसियों और गैर-सरकारी संगठनों को ठेका देना काफी आम है, और कई विकासशील देशों में, समाज के सबसे गरीब तबके को ये सेवाएँ गैर-सरकारी संगठनों द्वारा ही मुख्य रूप से दी जा रही हैं। इन सेवाओं की गुणवत्ता या उनको पर्याप्त रूप से उपलब्ध कराने की निगरानी में राज्य की कोई प्रत्यक्ष भूमिका नहीं है। यह विडम्बना ही है कि, अपने बच्चों को सुरक्षात्मक आवरण का विस्तार करने की अपनी जिम्मेदारी से राज्य की यह निर्लिप्तता सहस्राब्दी विकास लक्ष्यों और बच्चों के अधिकारों के अधिनियम के अनुपालन के साथ हो रही है।

नागरिक के अधिकारों का विचार लोकतन्त्र की अवधारणा का आधार है। एक उदारवादी लोकतान्त्रिक परिप्रेक्ष्य में राज्य की ओर से पूर्ण जागरूकता का अर्थ है बच्चों को दिया गया कोई भी अधिकार, उस प्रवृति का नहीं हो सकता जैसा कि उसके वयस्क नागरिकों को दिया गया है। इसका कारण यह है कि बच्चों से अपने अधिकारों की सुरक्षा के प्रति सतर्क रहने की और इन अधिकारों का

हनन होने की दशा में अपना हक जता सकने की उम्मीद नहीं की जा सकती है। इन कारणों से, बच्चों के अधिकारों को राज्य के स्वयं के संस्थानों में मूर्त रूप से होने की आवश्यकता होती है। दूसरे शब्दों में, वे इन अधिकारों को आउटसोर्स नहीं कर सकते हैं और ना ही स्वैच्छिक या निजी संस्थानों के विवेक के स्तर के अधीन हो सकते हैं। इस दृष्टिकोण से, बच्चों के कल्याण के लिए अधिकार-आधारित दृष्टिकोण को अपनाना, उस पृष्ठभूमि में, जहाँ राज्य इस क्षेत्र से अपने हाथ उपलब्ध बजटों में कमी करके पीछे खींच रहा है, स्पष्ट रूप से विरोधाभासी नजर आता है। ऐसे विरोधाभास को नव-उदारवाद के विकास के लक्षण के रूप में वर्णित किया जा सकता है जो उन उभरते लोकतन्त्रों में दिखता है जहाँ उदार राज्य का अभी भी गठन होना बाकी है और इसे इस प्रकार कार्य करना है कि बच्चे इस पर निर्भर हो सकें। नव-उदारवादी राज्य की नीतियों का अध्यापन पर प्रभाव पहले प्रस्तुत किए गए विश्लेषण के संयोजन के रूप में देखा जाए तो, बाल कल्याण में राज्य की भूमिका की अवनति, शिक्षकों की पेशेवर स्थिति में आई गिरावट का भी एक प्रमुख कारक बनती है।

निष्कर्ष

नव-उदारवाद का उदय हमारे समय का एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक विकास है। मैंने शिक्षा, इसकी नीतियों और चलन दोनों पर इसके कुछ प्रभावों पर विचार विमर्श किया है, लेकिन यह संक्षिप्त चर्चा एक तरह से केवल संकेत ही दे सकती है कि इसे पूरी तरह से समझने के लिए किस प्रकार के अन्वेक्षण की आवश्यकता है। एक सामाजिक गतिविधि के रूप में शिक्षा, जिस पर केवल विशाल निवेश और संगठन की आवश्यकता नहीं है बल्कि एक नैतिक दृष्टि की भी आवश्यकता है, राज्य पर निर्भर है। यही कारण है कि राज्य के स्वयं के चरित्र और उसमें होने वाले परिवर्तनों का महत्त्व हमें तब पता चलता है जब हम स्कूलों और विश्वविद्यालयों में चल रहे अध्यापन और अधिगम के सामाजिक चरित्र को सुलझाने का प्रयास करते हैं। उपरोक्त चर्चा से पता चलता है कि जहाँ शिक्षकों ने अपनी स्वायत्तता और उनके पेशे की गरिमा खो दी है, वहीं अधिगम को व्यवहारवादी शर्तों में अधिक से अधिक परिभाषित किया जाने लगा है।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के दशकों में पाठ्यचर्या के सिद्धान्त और शैक्षणिक अभ्यास में किए गए विकास या तो स्थिर हो रहे हैं या फिर उन्हें हटाया जा रहा है। नव-उदारवाद, कल्याण के एक बाजारवादी मॉडल को बढ़ावा देता है; शिक्षा के क्षेत्र में इसने पहले से ही राज्य को उसकी व्यापक

जिम्मेदारियों से हटा दिया है। उदारवादी लोकतान्त्रिक विचार और प्रथाओं से हुए फायदे को बचाने के लिए हमें अध्यापन की अवधारणा को एक सम्बन्धपरक गतिविधि के रूप में पुनर्जीवित करने पर विचार करना चाहिए। ऐसे फैसले का एक निहितार्थ यह है कि हमें ऐसी किसी भी पहल का विरोध करना होगा जो नौकरशाही वाले पाठ्यक्रम तय करके और पूर्वानुमेय नतीजों को ध्येय बनाकर शिक्षकों को जवाबदेह बनाना चाहती है।

सन्दर्भ सूची :

Gray, John (2009): *Gray's Anatomy: Selected Writings* (London: Allen Lane).

Helperin, R and Ratteree (2003): "Where Have All the Teachers Gone? The Silent Crisis", *Prospects*, (33: 2),pp133-38.

Kumar, K (1991-2005): *Political Agenda of Education* (New Delhi: Sage).

Macpherson, C B (1974): *Democratic Theory: Essays in Retrieval* (Oxford: Clarendon Press).

Stenhouse, L (1980): *Curriculum Research and Development in Action* (London: Heinemann).